Chapter पैंतीस

कृष्ण के वनविहार के समय गोपियों द्वारा कृष्ण का गायन

इस अध्याय में गोपियों के गीत हैं, जिन्हें वे कृष्ण के प्रति अपना विरह-भाव व्यक्त करने के लिए तब गाती हैं जब दिन के समय कृष्ण जंगल चले जाते हैं।

ज्यों ज्यों श्रीकृष्ण से गोपियों का विरह-भाव तीव्र होता जाता है त्यों त्यों उनके नाम, रूप, गुण तथा लीलाएँ उनके हृदयों में एक ही साथ प्रकट होने लगती हैं। इस प्रकार वे मिलकर गाती हैं कि ''कृष्ण का सौन्दर्य सबों के मन को आकृष्ट करने वाला है। जब वे त्रिभंग होकर अपनी बाँसुरी बजाते हैं, तो आकाश में अपने पतियों के साथ विचरण करती हुई सिद्धों की पत्नियाँ उनके प्रति आकृष्ट हो जाती हैं और बाह्य वास्तविकता को भूल जाती हैं। चरागाह में बैल, गौवें तथा अन्य पशु हर्षविभोर हो उठते हैं और अपने दाँतों के बीच में बिना चबाई घास दबाये शान्त खड़े रहते हैं तथा बनाए गये चित्रों से प्रतीत होते हैं। यहाँ तक कि अचेत नदियाँ भी बहना बन्द कर देती हैं।

''जरा देखो तो! जब कृष्ण वनवासी वस्त्र पहन लेते हैं और अपनी बाँसुरी बजाकर गौवों के नाम पुकारते हैं, तो वृक्ष तथा लताएँ तक प्रेमविभोर हो उठती हैं जिससे उनके अंग-प्रत्यंग में व्रण उत्पन्न हो

जाते हैं और उनका रस अश्रुधारा की तरह फूट पड़ता है। कृष्ण की बाँसुरी की ध्वनि सरोवर के सारसों, हंसों तथा अन्य पक्षियों की आँखों को गहन ध्यान में बन्द करा देती है। आकाश में बादल उनकी वंशी की ध्वनि का अनुकरण करते हुए धीमे स्वर में गरजते हैं और इन्द्र, शिव तथा ब्रह्मा जैसे संगीतविशारद भी चकित हो उठते हैं। जिस तरह हम गोपियाँ कृष्ण को अपना सर्वस्व अर्पित करने को आतुर रहती हैं उसी तरह श्याम-हिरण की पत्नियाँ हमारा अनुकरण करती हुईं उनका पीछा करती हैं।

''जब कृष्ण व्रज लौटते होते हैं, तो वे निरन्तर बाँसुरी बजाते हैं और उनके तरुण संगी उनका यशोगान करते हैं और ब्रह्मा तथा अन्य प्रमुख देवता उनके चरणकमलों की पूजा करने आते हैं।''

इस तरह कृष्ण के तीव्र विरह का अनुभव करती हुईं गोपियाँ उनकी लीलाओं का गायन करती हैं।

श्रीशुक उवाच
गोप्यः कृष्णे वनं याते तमनुद्रुतचेतसः ।
कृष्णलीलाः प्रगायन्त्यो निन्युर्दुःखेन वासरान् ॥ १ ॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—श्रीशुकदेव गोस्वामी ने कहा; गोप्यः—गोपियाँ; कृष्णे—कृष्ण के; वनम्—वन को; याते—जाने पर; तम्—उसके; अनुद्रुत—पीछा करते; चेतसः—जिनके मन; कृष्ण-लीलाः—कृष्ण की दिव्य लीलाएँ; प्रगायन्त्यः—जोर जोर से गाती हुई; निन्युः—बिताया; दुःखेन—दुख के साथ; वासरान्—दिन।

शुकदेव गोस्वामी ने कहा : जब भी कृष्ण वन को जाते थे तो गोपियों के मन उन्हीं के पीछे भाग जाते थे और इस तरह युवतियाँ उनकी लीलाओं का गान करते हुए खिन्नतापूर्वक अपने दिन बिताती थीं।

तात्पर्य : यद्यपि गोपियाँ रात्रि के समय रासनृत्य में कृष्ण के प्रत्यक्ष संग का आनन्द लेती थीं किन्तु दिन में कृष्ण अपना सामान्य कार्य करने में—जंगल में गौवें चराने में—लगे रहते थे। उस समय गोपियों के मन उनके साथ चले जाते किन्तु उन बेचारियों को गाँव में रहकर अपने गृहकार्य करने पड़ते थे। इस तरह वियोग की पीड़ा सहते हुए वे कृष्ण की दिव्य लीलाओं का गायन करती रहती थीं।

श्रीगोप्य ऊचुः
वामबाहुकृतवामकपोलो
वल्गितभ्रुरधरार्पितवेणुम् ।
कोमलाङ्गुलिभिराश्रितमार्गं
गोप्य ईरयति यत्र मुकुन्दः ॥ २ ॥

व्योमयानवनिताः सह सिद्धै-
विस्मितास्तदुपधार्य सलज्जाः ।
काममार्गणसमर्पितचित्ताः
कश्मलं ययुरपस्मृतनीव्यः ॥ ३ ॥

शब्दार्थ

श्री-गोप्यः ऊचुः—गोपियों ने कहा; वाम—बायीं; बाहु—भुजा पर; कृत—रखकर; वाम—बाएँ; कपोलः—गाल को; वल्गित—हिलती हुई; भ्रुः—भौंहें; अधर—होंठों पर; अर्पित—रखी; वेणुम्—बाँसुरी को; कोमल—सुकुमार; अङ्गुलिभिः—अपनी अँगुलियों से; आश्रित-मार्गम्—बन्द किये गये छेद; गोप्यः—हे गोपियो; ईरयति—बजाते हैं; यत्र—जहाँ; मुकुन्दः—कृष्ण; व्योम—आकाश में; यान—विचरण करती; वनिताः—स्त्रियाँ; सह—साथ; सिद्धैः—सिद्ध देवताओं के; विस्मिताः—चकित; तत्—उसे; उपधार्य—सुनकर; स—सहित; लज्जाः—लाज; काम—कामवासना का; मार्गण—पीछा करते; समर्पित—अर्पित; चित्ताः—उनके मन; कश्मलम्—कष्ट; ययुः—अनुभव किया; अपस्मृत—भूलकर; नीव्यः—कमरबंध।

गोपियों ने कहा : जब मुकुन्द अपने होंठों पर रखी बाँसुरी के छेदों को अपनी सुकुमार अँगुलियों से बन्द करके उसे बजाते हैं, तो वे अपने बाएँ गाल को अपनी बाईं बाँह पर रखकर अपनी भौंहों को नचाने लगते हैं। उस समय आकाश में अपने पतियों अर्थात् सिद्धों समेत विचरण कर रही सिद्धपत्नियाँ चकित हो उठती हैं। जब ये स्त्रियाँ वंशी की ध्वनि सुनती हैं, तो उनके मन कामवासना से चलायमान हो उठते हैं और अपनी पीड़ा में उन्हें इसकी भी सुधि नहीं रह जाती कि उनके कमरबंध शिथिल हुए जा रहे हैं।

तात्पर्य : श्रील जीव गोस्वामी कहते हैं कि इस अध्याय में गोपियों के उन कथनों का संकलन है जिन्हें वे वृन्दावन में छोटी छोटी टोलियों में इधर-उधर खड़ी होकर समय समय पर व्यक्त करती थीं।

हन्त चित्रमबलाः शृणुतेदं
हारहास उरसि स्थिरविद्युत् ।
नन्दसूनुरयमार्तजनानां
नर्मदो यर्हि कूजितवेणुः ॥ ४ ॥
वृन्दशो व्रजवृषा मृगगावो
वेणुवाद्यहृतचेतस आरात् ।
दन्तदष्टकवला धृतकर्णा
निद्रिता लिखितचित्रमिवासन् ॥ ५ ॥

शब्दार्थ

हन्त—ओह; चित्रम्—आश्चर्य; अबलाः—हे बालाओ; शृणुत—सुनो; इदम्—यह; हार—गले के हार सदृश (चमकीला); हासः—हँसी; उरसि—वक्षस्थल पर; स्थिर—अचल; विद्युत्—बिजली; नन्द-सूनुः—नन्द महाराज का पुत्र; अयम्—यह; आर्त—दुखी; जनानाम्—मनुष्यों के लिए; नर्म—प्रसन्नता का; दः—देने वाला; यर्हि—जब; कूजित—ध्वनित; वेणुः—वंशी; वृन्दशः—झुंडों में; व्रज—चरागाह में रखे गये; वृषाः—बैल; मृग—हिरण; गावः—गाएँ; वेणु—बाँसुरी के; वाद्य—बजाने से; हृत—चुराये गये; चेतसः—मन; आरात्—दूरी पर; दन्त—अपने दाँतों से; दष्ट—काटा गया; कवलाः—कौर; धृत—खड़ा किये हुए; कर्णाः—अपने कान; निद्रिताः—सुप्त; लिखित—अंकित; चित्रम्—चित्र; इव—सदृश; आसन्—थे।

हे बालाओ, दुखियों को आनन्द देने वाला यह नन्द का बेटा अपने वक्षस्थल पर अविचल दामिनी वहन करता है और इसकी हँसी रत्नजटित हार जैसी है। अब जरा कुछ विचित्र बात सुनो। जब वह अपनी बाँसुरी बजाता है, तो बहुत दूरी पर खड़े व्रज के बैल, हिरण तथा गौवें के झुंड के झुंड इस ध्वनि से मोहित हो जाते हैं। वे सब जुगाली करना बंद कर देते हैं और अपने कानों को खड़ा कर लेते हैं (चौकन्ने हो जाते हैं)। वे स्तम्भित होकर ऐसे लगते हैं मानो सो गये हों या चित्रों में बनी आकृतियाँ हों।

तात्पर्य : *स्थिरविद्युत्* शब्द लक्ष्मीजी का द्योतक है क्योंकि वे भगवान् के वक्षस्थल पर निवास करती हैं। जब वृन्दावन के पशु बाँसुरी की ध्वनि सुनते हैं, तो आनन्द के मारे वे स्तम्भित हो जाते हैं और अपना चारा चबाना बन्द कर देते हैं और इसे वे निगल नहीं सकते। कृष्ण के विरह में गोपियाँ भगवान् के वंशीवादन के असाधारण प्रभाव पर आश्चर्य करती हैं।

श्रील श्रीधर स्वामी ने सामासिक पद *हार-हास* की व्याख्या जिसमें भगवान् कृष्ण की मुसकान की तुलना एक हार से की गई है, इस प्रकार की है, ''वह व्यक्ति जिसकी हँसी रत्नजटित हार के समान स्पष्ट चमकने वाली है'' या कि ''वह जिसकी हँसी उसके रत्नजटित हारों से प्रतिबिम्बित होती है'' क्योंकि जब कृष्ण वंशी बजाते हैं, तो वे अपना सिर नीचे झुकाकर मन्द-मन्द हँसते हैं। इस शब्द का यह भी अर्थ हो सकता है—''वह जिसकी हँसी अपने तेज को, रत्नजटित हार की तरह, उसके वक्षस्थल पर डाल रही है'' अथवा ''वह जिसका हार उसकी हँसी के समान चमकीला है।''

बर्हिणस्तबकधातुपलाशै-
र्बद्धमल्लपरिबर्हविडम्बः ।
कर्हिचित्सबल आलि स गोपै-
र्गाः समाह्वयति यत्र मुकुन्दः ॥ ६ ॥
तर्हि भग्नगतयः सरितो वै
तत्पदाम्बुजरजोऽनिलनीतम् ।
स्पृहयतीर्वयमिवाबहुपुण्याः
प्रेमवेपितभुजाः स्तिमितापः ॥ ७ ॥

शब्दार्थ

बर्हिण—मोरों के; स्तबक—पंखों से; धातु—रंगीन खनिज (गेरू); पलाशैः—तथा पत्तियों से; बद्ध—व्यवस्थित; मल्ल—कुश्ती लड़ने वाले या पहलवान का; परिबर्ह—वेश; विडम्बः—अनुकरण करने वाला; कर्हिचित्—कभी कभी; स-बलः—

बलराम सहित; आलि—हे गोपी; सः—वह; गोपैः—ग्वालबालों के साथ; गाः—गौवों को; समाह्वयति—बुलाता है; यत्र—जब; मुकुन्दः—मुकुन्द; तर्हि—तब; भग्न—टूटी; गतयः—उनकी गति, हिलना-डुलना; सरितः—नदियाँ; वै—निस्सन्देह; तत्—उसके; पद-अम्बुज—चरणकमलों की; रजः—धूलि; अनिल—वायु से; नीतम्—लाई हुई; स्पृहयतीः—लालसा करती हुई; वयम्—हम सब; इव—जिस तरह; अबहु—कुछ कुछ; पुण्याः—पुण्यकर्म; प्रेम—भगवत्प्रेम के कारण; वेपित—काँपती; भुजाः—बाहें (लहरें); स्तिमित—रुक गया; आपः—जल।

हे प्रिय गोपी, कभी कभी कृष्ण अपने को पत्तियों, मोरपंखों तथा रंगीन खनिजों से सजाकर पहलवान का वेश बनाते हैं। तत्पश्चात् वे बलराम तथा ग्वालबालों के साथ बैठकर गौवों को बुलाने के लिए अपनी बाँसुरी बजाते हैं। उस समय नदियाँ बहना बन्द कर देती हैं, उनका जल उस आनन्द से स्तम्भित हो उठता है, जिसे वे उस वायु की उत्सुकतापूर्वक प्रतीक्षा करते हुए अनुभव करती हैं, जो उनके लिए भगवान् के चरणकमलों की धूल लाएगा। किन्तु हमारी ही तरह नदियाँ अधिक पवित्र नहीं हैं, अतः वे प्रेमवश काँपते हुए बाँहों से उनकी प्रतीक्षा करती रहती हैं।

तात्पर्य : यहाँ पर गोपियाँ कह रही हैं कि कृष्ण की बाँसुरी की ध्वनि नदी जैसी जड़ वस्तुओं को भी चेतन बनाती है, जिससे वे आनन्द से स्तम्भित हो जाती हैं। जिस तरह गोपियाँ सदैव कृष्ण के शारीरिक सान्निध्य में नहीं रह सकती थीं उसी तरह नदियाँ भगवान् के चरणकमलों तक नहीं आ सकतीं थीं। यद्यपि वे भगवान् को चाहती थीं किन्तु आनन्द के मारे उनका हिलना-डुलना रुक जाता था और उनकी लहरों रूपी भुजाएँ भगवत्प्रेम में काँपने लगती थीं।

अनुचरैः समनुवर्णितवीर्य
आदिपूरुष इवाचलभूतिः ।
वनचरो गिरितटेषु चरन्ती-
र्वेणुनाह्वयति गाः स यदा हि ॥ ८ ॥
वनलतास्तरव आत्मनि विष्णुं
व्यञ्जयन्त्य इव पुष्पफलाढ्याः ।
प्रणतभारविटपा मधुधाराः
प्रेमहृष्टतनवो ववृषुः स्म ॥ ९ ॥
दर्शनीयतिलको वनमाला-
दिव्यगन्धतुलसीमधुमत्तैः ।
अलिकुलैरलघु गीतामभीष्ट-
माद्रियन्यर्हि सन्धितवेणुः ॥ १० ॥
सरसि सारसहंसविहङ्ग-

श्चारुगीताहृतचेतस एत्य ।
हरिमुपासत ते यतचित्ता
हन्त मीलितदृशो धृतमौनाः ॥ ११ ॥

शब्दार्थ

अनुचरैः—साथियों के द्वारा; समनुवर्णित—विस्तार से वर्णित होकर; वीर्यः—पराक्रम; आदि-पूरुषः—आदिपुरुष; इव—सदृश; अचल—स्थिर; भूतिः—ऐश्वर्य; वन—वन में; चरः—इधर-उधर घूमते; गिरि—पर्वतों के; तटेषु—पार्श्व में, तराई में; चरन्तीः—चरती हुई; वेणुना—अपनी बाँसुरी से; आह्वयति—बुलाता है; गाः—गौवों को; सः—वह; यदा—जब; हि—निस्सन्देह; वन-लताः—जंगल की लताओं; तरवः—तथा वृक्षों ने; आत्मनि—अपने में; विष्णुम्—भगवान् विष्णु को; व्यञ्जयन्त्यः—प्रकट करते हुए; इव—मानो; पुष्प—फूलों; फल—तथा फलों से; आढ्याः—सम्पन्न; प्रणत—झुके हुए; भार—भार से; विटपाः—डालें; मधु—मधुर रस की; धाराः—धाराएँ; प्रेम—प्रेम से; हृष्ट—रोमांचित; तनवः—शरीर (तने); ववृषुः स्म—वर्षा की; दर्शनीय—देखने में आकर्षक लोगों में; तिलकः—सर्वश्रेष्ठ; वन-माला—जंगल के फूलों से बनी माला पर; दिव्य—अलौकिक; गन्ध—सुगन्ध; तुलसी—तुलसी के फूलों की; मधु—शहद जैसी मिठास से; मत्तैः—प्रमत्त; अलि—भौंरों के; कुलैः—झुंडों से; अलघु—प्रबल; गीतम्—गायन; अभीष्टम्—इच्छित; आद्रियन्—कृतज्ञतापूर्वक स्वीकार करते हुए; यर्हि—जब; सन्धित—रखा; वेणुः—अपनी बाँसुरी; सरसि—झील में; सारस—सारस पक्षी; हंस—हंस; विहङ्गाः—तथा अन्य पक्षी; चारु—मनोहर; गीत—(वंशी के) गीत से; हृत—चुराये गये; चेतसः—मन; एत्य—आगे आकर; हरिम्—भगवान् कृष्ण को; उपासत—पूजा करते हैं; ते—वे; यत—वश में; चित्ताः—मन; हन्त—हाय; मीलित—बन्द; दृशः—उनकी आँखें; धृत—धारण किया हुआ; मौनाः—मौन।

कृष्ण अपने सखाओं के साथ जंगल में घूमते फिरते हैं। ये सखा उनके शानदार कार्यों का जोरशोर से यशगान करते हैं। इस तरह वे पूर्ण पुरुषोत्तम परमेश्वर की तरह अपने अक्षय ऐश्वर्य का प्रदर्शन करते प्रतीत होते हैं। जब गाएँ पर्वत की तलहटी में घूमती हैं और कृष्ण अपनी वंशी की तान से उन्हें बुलाते हैं, तो वृक्ष तथा जंगल की लताएँ, प्रत्युत्तर में, फूलों तथा फलों से इतनी लद जाती हैं कि वे अपने हृदयों के भीतर भगवान् विष्णु को प्रकट करती प्रतीत होती हैं। जब भार से उनकी शाखाएँ नीचे झुक जाती हैं, तो उनके तनों के तन्तु तथा लताएँ भगवत्प्रेम से रोम जैसी उठ खड़ी होती हैं और वृक्ष तथा लताएँ दोनों ही मधुर रस की वर्षा करने लगते हैं।

कृष्ण द्वारा पहनी गयी माला के तुलसी के फूलों की मधु जैसी दिव्य गंध से उन्मत्त भौंरों के समूह उनके लिए उच्च स्वर से गुंजार करने लगते हैं और पुरुषों में सर्वाधिक सुन्दर वह कृष्ण अपने अधरों पर अपनी वंशी रखकर और उसे बजाकर उनके गीत की धन्यवाद-सहित प्रशंसा करते हैं। तब मनोहारी वंशी-गीत सारसों, हंसों तथा झील में रहने वाले अन्य पक्षियों के चित्त को चुरा लेता है। निस्सन्देह ये सभी अपनी आँखें बन्द किये और मौन साधे उनके पास जाते हैं और गहन ध्यान में उन पर अपनी चेतना को स्थिर करते हुए उनकी पूजा करते हैं।

तात्पर्य : श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर ने इन श्लोकों पर कई चमत्कारी टीकाएँ की हैं। उन्होंने दृष्टान्त दिया है कि जिस तरह गृहस्थ वैष्णवजन निकट आ रही किसी संकीर्तन टोली को सुनते हैं, तो

वे आह्लादित होकर नमस्कार करते हैं, उसी तरह वृन्दावन के वृक्षों तथा लताओं ने जब कृष्ण की वंशी सुनी तो वे आह्लादित हो उठे और उन्होंने अपनी शाखाओं तथा लताओं को नीचे झुका दिया। श्लोक १० में आगत *दर्शनीयतिलक* शब्द न केवल यह सूचित करता है कि भगवान् (देखने में) ''सर्वश्रेष्ठ'' हैं अपितु उन्होंने वृन्दावन के जंगल की खनिज पदार्थयुक्त मिट्टी से मिली गेरू से आकर्षक लाल तिलक लगाकर अपने को अलंकृत किया।

श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर यह भी इंगित करते हैं कि यद्यपि तुलसी कई प्रकार से परम आदरित है किन्तु सामान्यतया अत्यन्त सुगन्धित वृक्ष नहीं मानी जाती। फिर भी प्रात:काल तुलसी से ऐसी दिव्य गन्ध निकलती है, जिसे दिव्य पुरुष ही समझ पाते हैं, सामान्य व्यक्ति नहीं। हाँ, वे भौंरें जो भगवान् द्वारा पहनी पुष्पमाला के चारों ओर मँडराते हैं अवश्य ही इस सुगन्ध की कदर करते हैं। श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती *भागवत* (३.१५.१९) से उद्धरण देते हैं कि वैकुण्ठ के सर्वाधिक पौधे तक तुलसीदेवी की विशिष्टता की प्रशंसा करते हैं।

श्लोक १० में *संधितवेणु:* शब्द सूचित करता है कि कृष्ण ने अपने होंठों पर वंशी को मजबूती से रखा था। और इस वंशी से निकली तान निश्चय ही सर्वाधिक मोहक ध्वनि है जैसाकि इस अध्याय में गोपियों ने कहा है।

सहबल: स्त्रगवतंसविलास:
सानुषु क्षितिभृतो व्रजदेव्य: ।
हर्षयन्यर्हि वेणुरवेण
जातहर्ष उपरम्भति विश्वम् ॥ १२॥
महदतिक्रमणशङ्कितचेता
मन्दमन्दमनुगर्जति मेघ: ।
सुहृदमभ्यवर्षत्सुमनोभि-
श्छायया च विदधत्प्रतपत्रम् ॥ १३॥

शब्दार्थ

सह-बल:—बलराम के साथ; स्त्रक्—फूल की माला; अवतंस—सिर पर आभूषण की तरह; विलास:—खेलखेल में पहनकर; सानुषु—तलहटी में; क्षिति-भृत:—पर्वत की; व्रज-देव्य:—हे वृन्दावन की देवियो (गोपियो); हर्षयन्—हर्ष उत्पन्न करते हुए; यर्हि—जब; वेणु—उनकी वंशी की; रवेण—प्रतिध्वनि से; जात-हर्ष:—हर्षित होकर; उपरम्भति—आस्वादन कराते हैं; विश्वम्—सारे जगत को; महत्—महापुरुष के; अतिक्रमण—अवमानना; शङ्कित—डरा हुआ; चेता:—मन में; मन्द-मन्दम्—अत्यन्त धीरे धीरे; अनुगर्जति—बदले में गरजता है; मेघ:—बादल; सुहृदम्—अपने मित्र के ऊपर; अभ्यवर्षत्—वर्षा करता है;

सुमनोभिः—फूलों से; छायया—अपनी छाया से; च—तथा; विदधत्—प्रदान करते हुए; प्रतपत्रम्—सूर्य से रक्षा के लिए छाता।

हे व्रज-देवियो, जब कृष्ण बलराम के साथ खेलखेल में अपने सिर पर फूलों की माला धारण करके पर्वत की ढालों पर विहार करते हैं, तो वे अपनी वंशी की गूँजती ध्वनि से सबों को आह्लादित कर देते हैं। इस तरह वे सम्पूर्ण विश्व को प्रमुदित करते हैं। उस समय महान् पुरुष के अप्रसन्न होने के भय से भयभीत होकर निकटवर्ती बादल उनके साथ होकर मंद मंद गर्जना करता है। यह बादल अपने प्रिय मित्र कृष्ण पर फूलों की वर्षा करता है और धूप से बचाने के लिए छाते की तरह छाया प्रदान करता है।

विविधगोपचरणेषु विदग्धो
वेणुवाद्य उरुधा निजशिक्षाः ।
तव सुतः सति यदाधरबिम्बे
दत्तवेणुरनयत्स्वरजातीः ॥ १४॥
सवनशस्तदुपधार्य सुरेशाः
शक्रशर्वपरमेष्ठिपुरोगाः ।
कवय आनतकन्धरचित्ताः
कश्मलं ययुरनिश्चिततत्त्वाः ॥ १५॥

शब्दार्थ

विविध—अनेक; गोप—ग्वालों के; चरणेषु—कार्यों में; विदग्धः—पटु; वेणु—वंशी के; वाद्ये—बजाने में; उरुधा—कई गुना; निज—अपनी; शिक्षाः—जिसकी शिक्षाएँ; तव—तुम्हारा; सुतः—बेटा; सति—हे पवित्र स्त्री (यशोदा); यदा—जब; अधर—होंठों पर; बिम्बे—बिम्ब फलों जैसे लाल; दत्त—रखी हुई; वेणुः—वंशी; अनयत्—ले आया; स्वर—संगीत ध्वनि की; जातीः—जातियाँ; सवनशः—उच्च, मध्यम तथा निम्न आरोहों से; तत्—उसे; उपधार्य—सुनकर; सुर-ईशाः—मुख्य देवता; शक्र—इन्द्र; शर्व—शिवजी; परमेष्ठि—तथा ब्रह्मा; पुरः-गाः—आदि; कवयः—विद्वान; आनत—झुका लिया; कन्धर—गर्दनें; चित्ताः—तथा मन; कश्मलम् ययुः—मोहित हो गये; अनिश्चित—निश्चय कर पाने में असमर्थ; तत्त्वाः—सार।

हे सती यशोदा माता, गौवों के चराने की कला में निपुण आपके लाड़ले ने वंशी बजाने की कई शैलियाँ खोज निकाली हैं। जब वह अपने बिम्ब सदृश लाल होंठों पर अपनी वंशी रखता है और विविध तानों में स्वर निकालता है, तो इस ध्वनि को सुनकर ब्रह्मा, शिव, इन्द्र तथा अन्य प्रधान देवता मोहित हो जाते हैं। यद्यपि वे महान् विद्वान अधिकारी हैं तो भी वे उस संगीत का सार निश्चित नहीं कर पाते; इसलिए वे अपना सिर तथा मन से नतमस्तक हो जाते हैं।

तात्पर्य : *तव सुतः सति* पद इस बात का सूचक है कि यहाँ पर माता यशोदा भी भगवान् कृष्ण का गंभीरता से गुणगान करने वाली गोपियों में से थीं। श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर के अनुसार शक्र

(इन्द्र) इत्यादि देवताओं में उपेन्द्र, अग्नि तथा यमराज सम्मिलित थे और शर्व (शिव) इत्यादि देवताओं में कात्यायनी, स्कन्द तथा गणेश थे। इसी तरह परमेष्ठि (ब्रह्मा) के साथ चारों कुमार तथा नारद थे। इस तरह ब्रह्माण्ड के सबसे बुद्धिमान व्यक्ति भी भगवान् के मोहक संगीत का सुचारु रूप से विश्लेषण कर पाने में असमर्थ थे।

निजपदाब्जदलैर्ध्वजवज्र-
नीरजाङ्कुशविचित्रललामैः ।
व्रजभुवः शमयन्खुरतोदं
वर्ष्मधुर्यगतिरीडितवेणुः ॥ १६ ॥
व्रजति तेन वयं सविलास-
वीक्षणार्पितमनोभववेगाः ।
कुजगतिं गमिता न विदामः
कश्मलेन कवरं वसनं वा ॥ १७ ॥

शब्दार्थ

निज—अपने; पद-अब्ज—चरणकमलों के; दलैः—फूलों की पंखड़ियों जैसे; ध्वज—पताका; वज्र—वज्र; नीरज—कमल; अङ्कुश—तथा अंकुश का; विचित्र—भाँति भाँति के; ललामैः—चिह्नों से; व्रज—व्रज की; भुवः—भूमि को; शमयन्—शान्त करते हुए; खुर—गाय के खुरों से; तोदम्—पीड़ा; वर्ष्म—अपने शरीर से; धुर्य—जिस तरह हाथी की; गतिः—चाल; ईडित—प्रशंसित; वेणुः—जिसकी वंशी; व्रजति—चलता है; तेन—उससे; वयम्—हम; सविलास—क्रीड़ायुक्त; वीक्षण—चितवन से; अर्पित—अर्पित; मनः-भव—कामवासना का; वेगाः—मंथन; कुज—वृक्षों जैसी; गतिम्—चाल (गति का अभाव); गमिताः—प्राप्त किया हुआ; न विदामः—हम नहीं जान पातीं; कश्मलेण—अपने मोह के कारण; कवरम्—चोटी; वसनम्—अपने वस्त्र; वा—अथवा।

जब कृष्ण अपने कमल-दल जैसे पाँवों से व्रज में घूमते हैं, तो भूमि पर पताका, वज्र, कमल तथा अंकुश जैसे प्रतीकों के स्पष्ट चिन्ह बनते जाते हैं और वे पृथ्वी को गौवों के खुरों से अनुभव होने वाली पीड़ा से प्रशमित करते हैं। जब वे अपनी विख्यात बाँसुरी बजाते हैं, तो उनका शरीर हाथी की अदा में झूमता है। इस तरह हम गोपियाँ, जो कृष्ण की विनोदप्रिय चितवन के कारण कामदेव द्वारा चंचल हो उठती हैं, वृक्षों की तरह स्तब्ध खड़ी रह जाती हैं और हमें अपने बालों की लर तथा वस्त्रों के शिथिल पड़ने जाने की भी सुध नहीं रह जाती।

तात्पर्य : यहाँ पर गोपियाँ श्रीकृष्ण के प्रति अपने माधुर्य आकर्षण का वर्णन कर रही हैं किन्तु अब माता यशोदा उनके साथ नहीं हैं। श्रील जीव गोस्वामी तथा अन्य आचार्यों की टीकाओं से यह स्पष्ट है कि इस अध्याय के कथन विभिन्न अवसरों तथा स्थानों पर व्यक्त हुए हैं। यह स्वाभाविक है क्योंकि गोपियाँ अहर्निश श्रीकृष्ण के विचारों में सदैव मग्न रहती थीं।

मणिधरः क्वचिदागणयन्गा
मालया दयितगन्धतुलस्याः ।
प्रणयिनोऽनुचरस्य कदांसे
प्रक्षिपन्भुजमगायत यत्र ॥ १८ ॥
क्वणितवेणुरववञ्चितचित्ताः
कृष्णमन्वसत कृष्णगृहिण्यः ।
गुणगणार्णमनुगत्य हरिण्यो
गोपिका इव विमुक्तगृहाशाः ॥ १९ ॥

शब्दार्थ

मणि—मणियों की (लड़); धरः—धारण किये; क्वचित्—कहीं; आगणयन्—गिनते हुए; गाः—गौवों को; मालया—फूलों की माला से; दयित—अपनी प्रिया; गन्ध—सुगन्ध पाकर; तुलस्याः—तुलसी के फूल जिनपर; प्रणयिनः—प्रेमी; अनुचरस्य—संगी का; कदा—किसी समय; अंसे—कंधे पर; प्रक्षिपन्—फेंकते हुए; भुजम्—अपनी बाँह; अगायत—गाया; यत्र—जब; क्वणित—बजायी हुई; वेणु—बाँसुरी की; रव—ध्वनि से; वञ्चित—चुराये गये; चित्ताः—हृदय; कृष्णम्—कृष्ण के; अन्वसत—निकट बैठ गईं; कृष्ण—काले हिरण की; गृहिण्यः—पत्नियाँ; गुण-गण—समस्त गुणों के; अर्णम्—समुद्र; अनुगत्य—पास आकर; हरिण्यः—हिरनियाँ; गोपिकाः—गोपियाँ; इव—सदृश्य; विमुक्त—त्यागकर; गृह—घर तथा परिवार की; आशाः—अपनी आशाएँ।

अब कृष्ण कहीं पर अपनी मणियों की लड़ी में गौवों की गिनती करते हुए खड़े हैं। वे तुलसी के फूलों की माला पहने हैं जिसमें उनकी प्रिया की सुगन्ध बसती है और अपनी एक बाँह अपने प्रिय ग्वालमित्र के कन्धे पर रखे हुए हैं। ज्योंही कृष्ण अपनी बाँसुरी बजाकर गाते हैं, तो उस गीत से कृष्ण-हिरणों की पत्नियाँ आकृष्ट होती हैं और वे दिव्य गुणों के सागर कृष्ण तक पहुँचकर उनके पास बैठ जाती हैं। वे भी हम गोपियों की तरह पारिवारिक जीवन के सुख की सारी आशाएँ त्याग चुकी हैं।

तात्पर्य : श्रील जीव गोस्वामी बतलाते हैं कि तीसरे पहर श्रीकृष्ण नये वस्त्र पहनते है और तब अपनी गायों को घर वापस लाने के लिए निकलते है। श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती वृन्दावन की दिव्य गायों के विषय में निम्नलिखित जानकारी प्रदान करते हैं—''श्वेत, लाल, काली तथा पीली—इन चार रंगों में से प्रत्येक रंग के पच्चीस उपविभाग थे जिससे कुल मिलाकर १०० रंग थे। यही नहीं चन्दन-तिलक जैसे रंग के गुणों वाली या मृदंग जैसे सिर के आकारों वाली गौवों के आठ और समूह बनते हैं। गायों के रंग और आकार के इन १०८ समूहों की गिनती के लिए कृष्ण १०८ मणियों वाली लड़ (माला) का प्रयोग करते हैं...''।

अतः जब कृष्ण ''हे धवली!'' (एक श्वेत गाय का नाम) लेकर पुकारते हैं, तो सफेद गायों का

पूरा झुंड का झुंड आगे आ जाता है और जब वे हंसी, चन्दनी, गंगा, मुक्ता इत्यादि कहकर पुकारते हैं, तो सफेद गायों के चौबीस और झुंड आगे आते हैं। लाल रंग वाली गौवें अरुणी, कुंकुम, सरस्वती कहलाती हैं और काले रंग वाली गौवें श्यामला, धूमला, यमुना इत्यादि कहलाती हैं। पीले रंग वाली गौवें पीता, पिंगला, हरितालिका इत्यादि कही जाती हैं। जिन गौवों के मस्तक पर तिलक लगा रहता है वे चित्रिता, चित्रतिलका, दीर्घतिलका, तिर्यकतिलका कहलाती हैं। अन्य झुंड की गौएँ मृदंगमुखी, सिंहमुखी इत्यादि कहलाती हैं।

इस तरह नाम लेकर पुकारने पर गौवें आगे आती जाती हैं और जब सबों को जंगल से घर वापस लाने का समय होता है, तो कृष्ण, यह विचार कर कि कहीं कोई गाय रह न जाए, उनकी गिनती अपनी मणिमाला में करते हैं।

कुन्ददामकृतकौतुकवेषो
गोपगोधनवृतो यमुनायाम् ।
नन्दसूनुरनघे तव वत्सो
नर्मदः प्रणयिणां विजहार ॥ २० ॥
मन्दवायुरुपवात्यनुकूलं
मानयन्मलयजस्पर्शेन ।
वन्दिनस्तमुपदेवगणा ये
वाद्यगीतबलिभिः परिवव्रुः ॥ २१ ॥

शब्दार्थ

कुन्द—चमेली के फूलों की; दाम—माला से; कृत—बनायी गई; कौतुक—क्रीड़ापूर्ण; वेषः—वेशभूषा; गोप—गोपबालों द्वारा; गोधन—तथा गायों द्वारा; वृतः—घिरा हुआ; यमुनायाम्—यमुना के तट पर; नन्द-सूनुः—नन्द महाराज का बेटा; अनघे—हे निष्पाप महिला; तव—तुम्हारा; वत्सः—लाड़ला बेटा; नर्म-दः—मनोरंजन कराने वाला; प्रणयिणाम्—अपने प्रिय संगियों के; विजहार—खेल चुका है; मन्द—धीमी; वायुः—वायु; उपवाति—बहती है; अनुकूलम्—अनुकूल; मानयन्—आदर दिखलाते हुए; मलय-ज—चन्दन (की सुगंध) के; स्पर्शेन—स्पर्श से; वन्दिनः—प्रशंसा करने वाले; तम्—उसको; उपदेव—लघु देवता की; गणाः—विभिन्न कोटियों के सदस्य; ये—जो; वाद्य—वाद्य यंत्रों वाले संगीत; गीत—गायन; बलिभिः—तथा उपहारों सहित; परिवव्रुः—घेर लिया है।

हे निष्पाप यशोदा, तुम्हारे लाड़ले नन्दनन्दन ने चमेली की माला से अपना विचित्र वेश सजा लिया है और इस समय वह यमुना के तट पर गौवों तथा ग्वालबालों के साथ अपने प्रिय संगियों का मनोरंजन कराते हुए खेल रहे हैं। मन्द वायु अपनी सुखद चन्दन-सुगंध से उनका आदर कर रही है और विविध उपदेवता चारों ओर बन्दीजनों के समान खड़े होकर अपना संगीत, गायन तथा श्रद्धा के उपहार भेंट कर रहे हैं।

तात्पर्य : श्रील जीव गोस्वामी बतलाते हैं कि गोपियाँ पुन: व्रज की महारानी माता यशोदा के आँगन में आई हुई हैं। दिन-भर गौवें चराने तथा खेलने के बाद कृष्ण के वृन्दावन लौटने का वर्णन करके गोपियाँ यशोदा को प्रोत्साहित कर रही हैं।

श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती की टीका है कि यहाँ पर जिन उपदेवों का उल्लेख है उनमें गन्धर्वगण सम्मिलित हैं, जो अपने दैवी गायन तथा नृत्य के लिए विख्यात हैं।

वत्सलो व्रजगवां यदगध्रो
वन्द्यमानचरण: पथि वृद्धै: ।
कृत्स्नगोधनमुपोह्य दिनान्ते
गीतवेणुरनुगेडितकीर्ति: ॥ २२ ॥
उत्सवं श्रमरुचापि दृशीना-
मुन्नयन्खुररजश्छुरितस्त्रक् ।
दित्सयैति सुहृदासिष एष
देवकीजठरभूरुडुराज: ॥ २३ ॥

शब्दार्थ

वत्सल:—स्नेहिल; व्रज-गवाम्—व्रज की गौवों के प्रति; यत्—क्योंकि; अग—पर्वत को; ध्र:—धारण करने वाले; वन्द्यमान—पूजित; चरण:—उनके पैर; पथि—रास्ते पर; वृद्धै:—वृद्ध या गुरुजनों द्वारा; कृत्स्न—सम्पूर्ण; गो-धनम्—गौवों का समूह; उपोह्य—एकत्र करके; दिन—दिन का; अन्ते—अन्त होने पर; गीता-वेणु:—अपनी वंशी बजाते हुए; अनुग—सँगियों से; ईडित—प्रशंसित; कीर्ति:—यश; उत्सवम्—उत्सव; श्रम—थकान से; रुचा—रंजित; अपि—भी; दृशीनाम्—आँखों के लिए; उन्नयन्—उठाते हुए; खुर—गौवों के खुरों से; रज:—धूल से; छुरित—सनी; स्रक्—माला; दित्सया—इच्छा से; एति—आ रहा है; सुहृत्—अपने मित्रों को; आशिष:—उनकी इच्छाएँ; एष:—यह; देवकी—माता यशोदा के; जठर—गर्भ से; भू:—उत्पन्न; उडु-राज:—चन्द्रमा।

व्रज की गौवों के प्रति अत्यधिक स्नेह के कारण कृष्ण गोवर्धनधारी बने। दिन ढलने पर अपनी सारी गौवों को समेट कर वे अपनी बाँसुरी पर गीत की धुन बजाते हैं और उनके मार्ग के किनारे खड़े उच्च देवतागण उनके चरणकमलों की पूजा करते हैं तथा उनके साथ चल रहे ग्वालबाल उनके यश का गान करते हैं। उनकी माला गौवों के खुरों से उठी धूल से धूसरित है और थकान के कारण बढ़ी हुई उनकी सुन्दरता हरएक के नेत्रों के लिए आह्लादयुक्त उत्सव प्रस्तुत करने वाली है। अपने मित्रों की इच्छाएँ पूरी करने के लिए उत्सुक, कृष्ण माता यशोदा की कोख से उदित चन्द्रमा हैं।

तात्पर्य : आचार्यों के अनुसार यहाँ पर गोपियाँ वृन्दावन के घरों की अटारियों पर चढ़ गईं जिससे वे कृष्ण को घर वापस आते ही शीघ्रातिशीघ्र देख सकें। माता यशोदा अपने पुत्र की वापसी के लिए

अत्यन्त उत्सुक थीं अत: उन्होंने सबसे लम्बी सुन्दर युवा गोपी को बुलाकर ऊपर जाने के लिए कहा जिससे वह देख सके कि वे कब पहुँचते हैं। स्पष्ट है कि कृष्ण को घर आते रास्ते में कुछ विलम्ब हो गया था क्योंकि रास्ते में खड़े बड़े बड़े देवता उनके चरणकमलों की पूजा करने लगे थे।

मदविघूर्णितलोचन ईषन्-
मानद: स्वसुहृदां वनमाली ।
बदरपाण्डुवदनो मृदुगण्डं
मण्डयन्ककुण्डललक्ष्म्या ॥ २४॥
यदुपतिर्द्विरदराजविहारो
यामिनीपतिरिवैष दिनान्ते ।
मुदितवक्त्र उपयाति दुरन्तं
मोचयन्व्रजगवां दिनतापम् ॥ २५॥

शब्दार्थ

मद—नशे से; विघूर्णित—घूमती हुई; लोचन:—आँखें; ईषत्—कुछ कुछ; मान-द:—मान प्रदर्शित करते; स्व-सुहृदाम्—अपने शुभचिन्तक मित्रों को; वन-माली—वन के पुष्पों की माला पहने; बदर—बेर फल की तरह; पाण्डु—श्वेताभ; वदन:—मुख; मृदु—कोमल; गण्डम्—गाल; मण्डयन्—अलंकृत किये हुए; कनक—सुनहरे; कुण्डल—कान के आभूषणों की; लक्ष्म्या—शोभा से; यदु-पति:—यदुवंश के स्वामी; द्विरद-राज—शाही हाथी की तरह; विहार:—खेलकूद; यामिनी-पति:—रात्रि का पति (चन्द्रमा); इव—सदृश; एष:—वह; दिन-अन्ते—दिन बीतने पर, संध्या-समय; मुदित—प्रसन्न; वक्त्र:—मुख; उपयाति—आ रहा है; दुरन्तम्—दुर्लंघ्य; मोचयन्—भगाते हुए; व्रज—व्रज की; गवाम्—गौवों के या जिनपर कृपा की जानी है उनके; दिन—दिन के; तापम्—पीड़ादायी धूप।

जब श्रीकृष्ण अपने शुभचिन्तक सखाओं को आदरपूर्वक शुभकामनाएँ देते हैं, तो उनकी आँखें थोड़ी-सी इस तरह घूमती हैं जैसे नशे में हों। वे फूलों की माला पहने हैं और उनके कोमल गालों की शोभा उनके सुनहरे कुण्डलों की चमक से तथा बदर बेर के रंग वाले उनके मुख की श्वेतता से बढ़ जाती है। रात्रि के स्वामी चन्द्रमा के सदृश अपने प्रसन्न मुख वाले यदुपति राजसी हाथी की अदा से चल रहे हैं। इस तरह वे व्रज की गौवों को दिन-भर की गर्मी से छुटकारा दिलाते हुए संध्या-समय घर लौटते हैं।

तात्पर्य : *गवाम्* शब्द संस्कृत के गो शब्द से व्युत्पन्न है, जिसके दो अर्थ हैं—''गाय'' तथा ''इन्द्रियाँ।'' इस तरह श्रीकृष्ण ने व्रज लौटकर वृन्दावन के वासियों को दिन-भर अपने से विलग रहने से उत्पन्न उनकी आँखों तथा अन्य इन्द्रियों की पीड़ा को हर लिया।

श्रीशुक उवाच

एवं व्रजस्त्रियो राजन्कृष्णलीलानुगायतीः ।
रेमिरेऽहःसु तच्चित्तास्तन्मनस्का महोदयाः ॥ २६ ॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—शुकदेव गोस्वामी ने कहा; एवम्—इस तरह; व्रज-स्त्रियः—व्रज की स्त्रियाँ; राजन्—हे राजन्; कृष्ण-लीला—कृष्ण की लीलाओं के विषय में; अनुगायतीः—निरन्तर कीर्तन करती; रेमिरे—आनन्द लूटतीं; अहःसु—दिन के समय; तत्-चित्ताः—उनमें लीन इनके हृदय; तत्-मनस्काः—उनके मन; महा—महान; उदयाः—उत्सव का-सा अनुभव करते।.

श्रीशुकदेव गोस्वामी ने कहा : हे राजन्, इस तरह वृन्दावन की स्त्रियाँ दिन के समय कृष्ण की लीलाओं का निरन्तर गान करते हुए आनन्द लूटतीं और उन सबों के मन तथा हृदय उन्हीं में लीन रहकर अपार उत्सवभाव से भरे रहते।

तात्पर्य : इस श्लोक से निश्चय ही पुष्टि हो जाती है कि भग्न-हृदया गोपियों की तथाकथित पीड़ा वास्तव में महान् आध्यात्मिक आनन्द है। भौतिक स्तर पर पीड़ा तो पीड़ा अर्थात् एक कालावधि है किन्तु आध्यात्मिक स्तर पर तथाकथित पीड़ा आध्यात्मिक आनन्द का एक भिन्न प्रकार मात्र है। पश्चिमी देशों में लोग विभिन्न स्वादों वाली आइसक्रीम मिलाकर स्वाद के अद्भुत मिश्रण उत्पन्न करने में मजा लेते हैं। इसी तरह आध्यात्मिक स्तर पर श्रीकृष्ण तथा उनके भक्तगण आध्यात्मिक आनन्द के स्वादों को कुशलतापूर्वक मिश्रित करते हैं। इस तरह प्रत्येक दिवस गोपियों के लिए एक महान् उत्सव बन जाता था।

इस प्रकार श्रीमद्भागवत के दसवें स्कंध के अन्तर्गत ''कृष्ण के वनविहार के समय गोपियों द्वारा कृष्ण का गायन'' नामक पैंतीसवें अध्याय के श्री श्रीमद् ए.सी. भक्तिवेदान्त स्वामी प्रभुपाद के विनीत सेवकों द्वारा रचित तात्पर्य पूर्ण हुए।